ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-2* March- 2021
Innovation The Research Concept

सार्त्र की सत्तामीमांसा में चेतना की अवधारणा

The Concept of Consciousness in Sartre's Ontology

Paper Submission: 04/03/2021, Date of Acceptance: 20/03/2021, Date of Publication: 24/03/2021

दिव्या शुक्ला
शोध छात्रा,
दर्शनशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उ०प्र०, भारत

सारांश

सार्त्र की गणना प्रमुख अस्तित्ववादी दार्शनिकों में की जाती है। वस्तुतः अस्तित्ववाद एक वाद 'Ideology' नहीं अपितु एक 'दृष्टि' 'Point of View* है। यह जीवन से जुड़ा दर्शन है। दर्शन में रूप में अस्तिवत्वाद का आरम्भ यद्यपि जर्मन दार्शनिक हुसर्ल, हाइडेगर तथा कीर्कगार्ड के दर्शन को माना जाता है तथापि अस्तित्व वाद का समग्र रूप सार्त्र के दर्शन में ही पाया जाता है।

Satra is counted among the leading existential philosophers. In fact existentialism is not a Ideology but a 'vision'. This is a philosophy related to life. The introduction of realism into philosophy, although the philosophies of the German philosophers Hüsserl, Heidegger, and Kierkegaard are considered, but the overall form of existentialism is found only in the philosophy of Satra.

मुख्य शब्द : अस्तित्ववाद, दृष्टि, चेतना, जागरूकता।
Existentialism, Vision, Consciousness, Awareness.

प्रस्तावना

सार्त्र के सम्पूर्ण दर्शन में चेतना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में उभरती हैं और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है सार्त्र द्वारा चेतना के स्वरूप, महत्तव, कार्य आदि का विशद् वर्णन। 'चेतना' का अंग्रेजी रूपान्तरण 'Consciousness' है जिसका अर्थ होता है ''कुछ जानना या ग्रहण करना''। चेतना एक 'बहुअर्थी' शब्द है। इसे चैतन्य, भान, आपा, समझ, जागरूकता, जागृति आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। इसका प्रयोग भी भिन्न भिन्न लोगों द्वारा भिन्न अर्थों में किया जाता है। चेतना के सत्तामीमांसीय स्वरूप की यदि बात की जाये तो सार्त्र के दर्शन में यह 'सांवृत्तिक सत्तामीमांसा' के रूप में सामने आती है, जिसका वर्णन उन्होने अपनी पुस्तक ''Being and nothingness'' 'An Essay on ontological phenomenology' में किया है। सार्त्र की सत्तामीमांसा हुसर्ल से प्रभावित है। अतः वह मानते हैं कि सत्ता का अध्ययन चेतना में प्रदत्त संवृत्तियों के आधार पर ही हो सकता है। वह ब्रेन्टानों के 'चेतना के विषयापेक्षी सिद्धान्त' से भी प्रभावित है जिसके अनुसार 'चेतना सदैव किसी विषय की चेतना होती है'। प्रस्तुत शोध पत्र में चेतना के इसी सत्ता मीमांसीय स्वरूप से सम्बन्धित बिन्दुओं को स्पष्ट किया जायेगा।

सार्त्र की सत्तामीमांसा में चेतना की अवधारणा

सार्त्र के दर्शन में सत्तामीमांसीय के स्वरूप की बात की जाए तो प्रश्न उठता है कि किस प्रकार की सत्ता को सार्त्र स्वीकार करते हैं तथा चेतना का उन सत्ताओं में क्या स्तर तथा क्या प्रभाव है? वस्तुतः सार्त्र तत्व को स्वीकार न करके सत्ता को स्वीकारते हैं इसी कारण उनकी तत्वमीमांसा, सत्तामीमांसा में परिवर्तित हो जाती है। पहले हम इसी तथ्य को स्पष्ट करेंगे। ''सार्त्र सत्तामीमासां और तत्वमीमांसा में भेद करते हैं। उनके अनुसार तत्वमीमांसा'' में 'सत्' की उत्पत्ति और उसके हेतु पर विचार किया जाता है। सत्तामीमांसा वस्तुतः 'क्यों' की उत्पत्ति और उसके हेतु पर विचार किया जाता है। सत्तामीमांसा में सत् के स्वरूप व उनकी अभिव्यक्ति का विवरण होता है। ''Ontology will therefore limit itself to declering that every thing takes place as if the in-itself in a project to found itself, gave itself the modification of the for- itself.''[1] तत्वमीमांसा वस्तुतः 'क्यों' पर आधारित होती है तथा कारणों एवं आधारों की खोज करती है, जबकि सत्तामीमांसा 'कैसे'' पर आधारित होती है अर्थात् मानवीय अस्तित्व की वास्तविकता कैसे सम्भव है? तथा जगत में यह किस प्रकार सहभागी है? आदि।

सार्त्र के दर्शन में सत्तामीमांसीय रूप में सत् तथा उसकी चेतना के स्वरूप को समझने का कारण यही है कि सार्त्र मानव की उत्पत्ति तथा उसके हेतु के विषय में चर्चा न करके सीधे उसके स्वरूप तथा अस्तित्व के विविध पक्षों पर चर्चा करते हैं। इसका एक अन्य कारण उनका निरीश्वरवादी होना भी है क्योंकि इस कारण वह सत् के उद्भव तक पहुँचने का प्रयास नहीं करते। इसी आधार पर उनके सत्तामीमांसा में चेतना के स्वरूप को निम्न चार विषयों के द्वारा समझ सकते हैं।

1. अचेतन सत् (Being-in-itself)
2. चेतन सत् (Being-for-itself)
3. अन्य चेतन सत् (Being-for-others)
4. निरीश्वरवाद (Atheism)

अचेतन सत् (Being-in-itself)

अचेतन सत् अर्थात् (Being-in-itself) को सार्त्र (in-soi) कहकर सम्बोधित करते है। (Being-in-itself) में यदि Being को देखें तो इसका अर्थ भी 'होना' ही है किन्तु यहाँ 'होना' चेतन सत् के 'होने' से नितान्त भिन्न है। Being अथवा 'होने का अर्थ यहाँ यह है कि – यह 'है', अवश्य किन्तु सिर्फ 'है'। इसका तात्पर्य हुआ कि अचेतन सत् का अस्तित्व अवश्य है किन्तु केवल अस्तित्व है उसे अपने अस्तित्व की कोई चेतना नहीं है। वह 'सत्' है अतः उसका अस्तित्व यथार्थ नहीं है। वह 'सत्' है अतः उसका अस्तित्व यथार्थ में तो है, किन्तु उसे अपने अस्तित्व की कोई चेतना नहीं है अतः यह अचेतन है।

अब यदि हम (in-self) पर ध्यान दें, तो इसका अर्थ है कि अचेतन सत् अपने आप में सत् है। इसका कोई कारण नहीं है। ''अचेतन सत् बस है''[2]– मात्र वही है जो वह है। इसें न तो कोई क्रिया है और न ही इसमें कोई सर्जनात्मक शक्ति है, न विकासक्रम। अचेतन तत्व अभेद्य है, गहन तथा अपारगम्य है। यदि इसके सार को पकड़ना भी चाहें तो इसको कोई अर्थ नहीं निकलता। सार्त्र इसे अर्थहीन या अरुचिकर बोलते हैं।

सार्त्र के अनुसार अचेतन सत् का कोई कारण नहीं है। यह 'self contained' है। मानव अस्तित्व अथवा चेतन सत् चारों ओर अचेतन सत् से घिरा हुआ होता है। मानव अस्तित्व ही अचेतन सत् को सार्थकता प्रदान करते हैं। सार्त्र के अनुसार ''हम अचेतन सत् को केवल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं लेकिन 'साध्य मूल्य' की खोज नहीं कर पातें''[3]।

सार्त्र अचेतन सत् के एक अन्य लक्षण को बताते हैं वह है ''unexplainable'' अर्थात्, 'अचेतन सत् की कोई व्याख्या नहीं है।'' यह धारणा ''Principal of sufficient reason'' का विरोध दर्शित करती है। ''पर्याप्त कारणता सिद्धान्त'' के अनुसार प्रत्येक वस्तु का कम से कम एक कारण तो अवश्य होता है जिससे उसका वर्णन किया जा सकता है किन्तु अचेतन सत् अवर्णनीय तथा अकारण है। यह पूर्णतः सकारात्मक है। इसमें किसी भी प्रकार की कोई नकारात्मकता नहीं है।

सार्त्र यहाँ यह भी स्पष्ट करते हैं कि जब वह (Being-in-itself) की बात करतें है तो इसका अर्थ जगत से है (The World), जगत से तात्पर्य उन अचेतन वस्तुओं से है जिन्हें सार्त्र बहु रूप में (Being-in-themselvs) कहते हैं। जैसे– वृक्ष, पत्थर, पेंसिल, आदि। यह चेतन सत् से भिन्न है, क्योंकि इसमें चेतना नहीं है। सार्त्र यहाँ 'अचेतन सत्' जो 'स्वयं में है' तथा जो अकारिक रूप से चेतन सत् का विषय बनती है। इसमें अन्तर स्पष्ट करते हैं सार्त्र मानते हैं कि 'अचेतन सत्' स्वयं में अरस्तु के 'द्रव्य' के समान है। यह शुद्ध अचेतन सत् है। इसे वह एक उदाहरण के माध्यम से समझाते हैं। ''मानिए ताँबा जो एक द्रव्य है, उसे हमने सिर्फ ताँबा या उसके शुद्ध रूप में कभी नहीं देखा है जैसे–सिक्का, मूर्ति आदि। हमें केवल उसके आकार या रूप की ही चेतना होती है। जब हम कोई भी आकार या वस्तु देखते हैं तो हमारी चेतना हमें उसे उस विशिष्ट आकार या रूप में दिखाती है। हम उसे देखकर यह नहीं कहते कि यह शुद्ध ताँबा या, अपने आप में ताँबा है बल्कि हम यह कहते हैं कि यह ताँबे के सिक्के अथवा ताँबे की मूर्ति है। उसे हम प्रायः उसके शुद्ध भाव में अनुभूति हीं नहीं कर पाते। सार्त्र इसी प्रकार बताते हैं कि टेबल, ऑटोमोबाइल आदि वस्तुएँ (Being-in-itself) या अचेतन सत् तो है किन्तु Pure (Being-in-itself) नहीं है अपितु इनमें इनके यह गुण जैसे आकृति, आकार आदि बाहर से आते हैं।

चेतन सत् और अचेतन सत् के पारस्परिक सम्बन्ध की सार्त्र ने बहुत अच्छे ढंग से व्याख्या की है। सार्त्र मानते हैं कि अचेतन सत् है, स्वयंभू है। उसका उससे अन्य कोई आधार नहीं है।, वह स्वयं अपना आधार है। उसका विधि और निषेध संभव नहीं है। सार्त्र मानते हैं कि ''चेतन सत्, अचेतन सत् को प्रकाशित करता है। इसे सार्त्र ने अपनी पुस्तक Being and nothingness में थियेटर के स्क्रीन तथा उस पर पड़ने वाली प्रकाश किरणों के माध्यम से समझाया है। ''थियेटर के स्क्रीन को वह अचेतन सत् के समान मानते हैं। यह स्वयं में कोई क्रिया नहीं कर सकता, इसका अस्तित्व तो अवश्य है परन्तु यह अकारण है। इसकी सार्थकता तब सिद्ध होती है जब इस पर लाइटबीम पड़ती है। यहाँ लाइटबीम उस चेतन के समान है जो उस स्क्रीन रूपी अचेतन सत् को प्रकाशित करके हमें ज्ञान प्रदान करती है।

चेतन सत् (Being-for-itself)

चेतना के सन्दर्भ में यदि हम सार्त्र की सत्तामीमांसा पर दृष्टिपात करें तो चेतन सत्र के रूप में सार्त्र ने मनुष्य के अस्तित्व को रखा है यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह अस्तित्व मात्र होना नहीं है अपितु होने की चेतना के साथ होना है यही वस्तुतः अस्तित्ववाद है, जिसे सात्र चेतना के माध्यम से वर्णित करते हैं। मानव चेतन सत्ता है। वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। सार्त्र तथा अन्य अस्तित्ववादी दार्शनिकों के अनुसार मानव संसार मं आने के उपरान्त अपने अस्तित्व का निर्माण स्वयं करता है। उपरोक्त पंक्तियों में अस्तित्ववादी मनुमष्य के समस्त गुणों को व्यक्त किया गया है तथा साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि संसार के समस्त घटनाओं में मानव ही केन्द्र है। मानव अस्तित्वशील प्राणी है परन्तु वह अन्य प्राणियों से भिन्न है। पशु में होने (Being) के अर्थ में अवश्य है किन्तु वस्तुतः मनुष्य शारीरिक के साथ–साथ वैचारिक स्तर पर भी पशु से भिन्न है ऐस इसीलिए है क्योंकि वह सोचता है तथा उसे अपने अस्तित्व की चेतना होती है अतः मानव उत्कृष्ट है।

सार्त्र चेतन सत् को Being-or-itself कहते हैं जिसका तात्पर्य है 'स्वयं के लिए'। चेतन सत् के लक्षणों की यदि बात करें तो Being-for-itself में for-itself का तात्पर्य हुआ कि वह अपने आप में अर्थात् in-itself नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि चेतन सत् किसी अन्य पर निर्भर करता है। प्रश्न यह है कि वह अन्य क्या है? इसके उत्तर में 'अन्य चेतन सत्' का अस्तित्व सामने आता है इसके विषय में हम बाद में अध्ययन करें। यदि चेतन सत् की बात करें तो सार्त्र के अनुसार ''चेतन सत् को किसी विशेष ढाँचे में नहीं ढाला जा सकता है''[4]। चेतन सत् अर्थात् मानव के लिए सार्त्र का मत है कि मानव को सदैव अपने अस्तित्व की चेतना अथवा ज्ञान होता है तथा वह निरन्तर नवीन रूपों में परिवर्तित भी होता रहता है। इसी आधार पर सार्त्र मनुष्य के लिए कहते हैं। ''वह जो है वह नहीं है तथा जो वह नहीं है वह है''[5]।

सार्त्र के अनुसार मानव अस्तित्व का अर्थ है 'चेतन अस्तित्व'। मानव वास्तव में 'चेतना' ही है। ''मानव की प्राथमिक अनुभूति तथ शक्ति उसकी 'आत्म–अस्तित्व की चेतना' ही होती है।'' Being-for-itself में यदि Being का महत्त्व समझे तो Being का अर्थ सिर्फ होना नहीं है। यह अस्तित्व की चेतना के साथ होना है। यह सतत् विकासशील तथा परिवर्तनशील चेतना है। अस्तित्व की प्रथम अनुभूति प्राक्– वैचारिक (Pre-reflexive) होती है तथा मानव का वास्तविक अस्तित्व यहीं से आरम्भ होता है। इसी अनुभूति के द्वारा वह स्वयं तथा अन्य वस्तुओं को अस्तित्व को समझता है।

अस्तित्व और चेतन सत् के रूप में मनुष्य के इसी संबंध के आधार पर सार्त्र का व्यक्तव्य है कि ''अस्तित्ववाद ही मानववाद है।'' प्रश्न उठता है कि मानव चेतना प्रथमतः क्रियाशील चेतना है या कि एक ज्ञाता रूप चेतना? उनके अनुसार अस्तित्व है, अस्तित्व अपने आप में है, अस्तित्व जो वह वही है। अस्तित्व अपने से भिन्न किसी और का संकेत न हीं करता, अपितु चेतना ही अपने से भिन्न का संकेत करती है। सार्त्र कहते हैं ''चेतना कुछ ऐसा नहीं है जो मनुष्य के पास है अपितु यह, वह है, जो वह है''[6]। सार्त्र ने इस वाक्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। इसके अनुसार चेतना के दो भाग है एक तो यह कि चेतना से जो कुछ समझा जाता है, वह नहीं है। साधारण रूप में चेतना को विषयी, मानसिक स्थितियाँ, इसके परिणाम आदि के रूप में समझा जाता है किन्तु चेतना के स्वरूप से इन सभी विकल्पों को अलग कर देते हैं। हुसर्ल ने अपनी व्याख्या में अनुभव से सभी विकल्पों को अलग करके अनुभव को शुद्ध–प्रदत्त के रूप में समझने की चेष्टा की। सार्त्र उनसे आगे निकल कर चेतना से विषय, विषयी, अहं, मन इन सभी को पृथक करने की बात करते हैं।

सार्त्र ने चेतन सत् या मानव का जो स्वरूप निर्धारित किया है उसके सार से पहले अस्तित्व है। सार्त्र ने मानव को सभी तत्वों से भिन्न माना है। वह कहते हैं कि ''मैं हूँ इसीलिए विचार करता हूँ।'' यदि मैं लेखक हूँ तो मुझमें लेखक होने की चेतना है किन्तु लेखक होने के बिना भी मेरा एक अस्तित्व है। वेद प्रकाश गौर के शब्दों में ''सार्त्र ने सत्ता को एन सोई (अपने में सत्) अर्थात् निज में स्थित यथार्थ और पोर सोई (अपने हेतु सत्) अर्थात् शुद्ध चेतना जो शून्यता है– इन दो घटकों में विभक्त किया है। सार्त्र की दार्शनिक प्रणाली में इन दोनों का सायुज्य एक असंभाव्यता है''[7]।

सार्त्र के अनुसार Being- for-itself वर्तमान से जुड़ा है लेकिन उसका सम्बन्ध भूतकाल भविष्य से भी है। जो सत्ता अपने भीतर अस्तित्व की चेतना से युक्त होकर निरंतर उभरती रहती है। वही अस्तित्वयुक्त है यह अनुभूति सिर्फ मनुष्य को ही हो सकती है। अतः वही एकमात्र चेतन सत् है। चेतन सत् ही अचेतन सत् को अर्थपूर्णता प्रदान करता है। यहाँ ध्यातव्य है कि चेतन सत्, अचेतन सत् पर निर्भर करता है।

मानव जो चेतन सत् है वह चेतनायुक्त अपने अस्तित्व की चेतना के कारण होता है। सिर्फ जन्म लेना ही अस्तित्वयुक्त होना नहीं है। नवजात शिशु को अस्तित्वयुक्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें अपने अस्तित्व की प्रथम अनुभूति या चेतना नहीं होती। उसमें केवल अपने वातावरण के अनुसार प्रतिक्रियाएँ होती हैं। जब उसे यह प्राथमिक अनुभूति होती है तो वह उस अनुभूति या चेतना के अनुसार स्वतंत्रत निर्णय लेकर अपने अस्तित्व को निरंतर उभारने का कार्य करता है। इन निर्णयों द्वारा ही वह अपना भविष्य निर्धारित करता है। सार्त्र यहाँ एक ओर शंका जाहिर करते हैं कि यह निश्चित नहीं है कि चेतन सत् भविष्य में अस्तित्ववान रहेगा भी या नहीं। क्योंकि यह सम्भव है कि स्वतंत्रता से उत्पन्न वेदना व झेल पाने के कारण वह अचेतन सत् में बदल जाए क्योंकि उसने उभरने की प्रक्रिया बंद कर दी। सार्त्र के अनुसार चेतना मनुष्य का एक ऐसा खोल है जिसे वह सदा अपने से ही भरता रहता है।

अन्य चेतन सत् –अन्य अचेतन सत् या (Being-for-others)

सार्त्र की सत्तामीमांसा में एक विशेष स्थान रखता है। सार्त्र मानते हैं कि चेतन अस्तित्व के विकास–क्रम में इसका विशेष स्थान है। यहाँ पर भी Being का अर्थ 'अस्तित्व की चेतना' के साथ होना ही है किन्तु यहाँ यह चेतना अन्य को इंगित करती है। अर्थात् चेतन सत् को आत्मचेतना के साथ–साथ 'अन्य' की चेतना की भी अनुभूति होती है। यह 'अन्य' है क्या? अन्य चेतन सत् से तात्पर्य अन्य मनुष्यों के अस्तित्व से है। सार्त्र इसका वर्णन करते हुए कहते हैं– ''मैं जिस जगत् को विषय रूप में देख रहा हूँ वह मेरी 'थाती' नहीं, वह केवल मेरी चेतना का विषय नहीं बल्कि 'अन्य' की चेतना का भी विषय है''[8]।

अन्य की उपस्थिति की चेतना भी एक प्रकार से चेतन–अस्तित्व ही है। यह अस्तित्ववान व्यक्ति के अस्तित्व की संरचना एवं विकास का अनिवार्य अंग है। सार्त्र के अनुसार– ''अन्य की चेतना से मेरा शुद्ध विषयी रूप अथवा आत्म–रूप खण्डित हो जाता है। मैं यदि अन्य की अनुभूति कर रहा हूँ तो अन्य को भी मेरी उपस्थिति की चेतना है। इस प्रकार अब मैं अन्य की चेतना का विषय बन जाता हूँ।'' सार्त्र मानते है कि अन्य की चेतना में हम वस्तुतः स्वयं का ही निषेध करते हैं। उनके अनुसार ''अन्य की सत्ता प्रथम अनुभव ही मेरा मूल पतन है''। ''My Original fall is the existence of others''[9]

इस प्रकार सार्त्र यह स्पष्ट करते हैं कि चेतन अस्तित्व अथवा चेतन सत् तो सबसे महत्त्वपूर्ण है ही किन्तु

चेतन मनुष्य, अचेतन तत्व तथा अन्य चेतन तत्व के अनुरूप ही आत्म–अस्तित्व को उभारता है। अतः 'अचेतन सत्' तथा 'अन्य चेतन सत्' भी सार्त्र की सत्तामीमांसा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसे स्पष्ट करते हुये वह एक उदाहरण देते हैं : '' मान लीजिए मै एक पार्क में टहल रहा हूं तथा पार्क मे वृक्षों, फूलों, प्रतिमाओं आदि को देख रहा हूं किन्तु ज्यों ही यह देखता हूं कि मै ही नहीं पार्क में अन्य व्यक्ति भी उन्हे देख रहे हैं तो इस बोध से मेरे लिए वस्तुओं का अर्थ ही बदल जाता है। क्योंकि मै समझता हूं कि वह मेरे ही नहीं बल्कि अन्य के भी विषय है। अब उनको अपनी स्वतंत्रता के आधार पर योजनाबद्ध नहीं कर सकता हूं। पार्क की समस्त वस्तुयें वही रहती हैं किन्तु मेरे लिए उनका अर्थ ही बदल जाता है।

''Thus suddenly an object has appeared which has stolen the world from me. Every thing is in place, every thing still exists for me: but every thing is traversed by an invisible, flight and fixed in the direction of a new object. The apearence of the other in the world corresponds therefore to a fixed sliding of the whole universe, to a decentralisation of the world which under line the centralisation which I can simultaneously..... ''[10]

निरीश्वरवाद

सार्त्र ईश्वर विचार या भाव का स्पष्ट खण्डन नहीं करते अपितु मानव– अस्तित्व की व्याख्या करने में कहीं भी ईश्वर के विचार की आवश्यकता महसूस नहीं करते। सार्त्र ने ईश्वर भाव के विरोध में कई तर्क भी दिये हैं। इसी कारण ईश्वर को न मानने के बाद भी यह उनकी तत्वमीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। सार्त्र मानते हैं ईश्वर चेतना प्राथमिक नहीं है। प्राथमिक आत्म–चेतना है। हर प्रकार का विचार या भाव इस प्रारम्भिक आत्म–चेतना के बाद ही आता है। ईश्वर विचार वस्तुतः मानव की अपनी प्राथमिक चेतना के अनुरूप बनायी हुई संरचना है। वस्तुतः वह मानते थे कि 'ईश्वर' का भाव भी 'अन्य चेतन सत्' की उपस्थिति के समान ही बनता है। अपने अस्तित्व की चेतना में ही व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की 'दृष्टि' की चेतना होती है। उसे प्रतीत होता है कि उसे भी देखा जा रहा है। इसी प्रकार उसे ईश्वर की भी चेतना होती है। ''वस्तुतः यह ''मैं'' तथा ''अन्य'' के सम्बन्ध की ही चेतना है''[11]।

सार्त्र ईश्वर भाव को चेतन सत्, अचेतन सत् (Being-in-itself-for-itself) कहते हैं। कारण स्वयं है। सार्त्र इसके विरोध में कहते हैं कि यदि ''ईश्वर 'स्वयंभू' है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह अपने अस्तित्व हेतु अन्य पर निर्भर नहीं करता। इस आधार पर फिर ईश्वर अस्तित्ववान हो ही नहीं सकता, क्योंकि अस्तित्व हेतु उसे फिर अन्य उपादानों पर निर्भर रहना पड़ेगा। यदि ईश्वर है तो जगत के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? जगत् ईश्वर के सामने दो रूपों में व्यक्त हो सकता है 'विषय' के रूप में या 'विषयी' के रूप में। यदि जगत ईश्वर के लिए 'विषय' है तो दोनों के द्वैत को स्वीकारना पड़ेगा। यदि ईश्वर के लिए जगत 'विषयी' है तो ईश्वर को इसकी सम्पूर्णता की उपस्थिति का आभास मात्र ही हो सकता है। इन दोनों ही स्थितियों में ईश्वर का रूप सीमित एवं खंडित होता है''[12]।

जैसा कि पूर्व विदित है कि सार्त्र मानते हैं कि मानव अस्तित्ववादी अर्थ में उस दिन अस्तित्ववान होताहै जब उसे पहली बार अपने अस्तित्व की अनुभूति होती है। मनुष्य का सम्बन्ध तो 'अचेतन–सत्' और 'अन्य–चेतन सत्' से ही होता हैं किन्तु कभी–कभी उसका मन प्रत्ययों में उलझकर इनके पीछे जाने लगता है। यह ऐसी सत्ता की खोज करने लगता है जो शुद्ध विषयी है, जिसमें ''मैं विषयी'' (We-subject) तथा 'मुझे विषय' (Us-subject) का भेद नहीं हो। यही विचार ईश्वर विचार है जो यथार्थ नहीं, यथार्थ के अतिक्रमण का परिणाम है।

यदि ईश्वर की सत्ता को स्वीकारा जाय तो इसका अर्थ है कि संसार में आरम्भ से ईश्वर रूपी एक शुद्ध चेतना विद्यमान थी जिसे किसी विषय की अपेक्षा नहीं थी, किन्तु यह मत 'चेतना के स्वरूप' के विपरीत है क्योंकि सार्त्र मानते हैं चेतना सदैव विषयोपेक्षी होती है। सार्त्र की निरीश्वरवादिता का सबसे प्रमुख आधार सार्त्र द्वारा मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास है। ईश्वर तथा मानवीय स्वतंत्रता में परस्पर विरोध दर्शित होता है क्योंकि जगत में ईश्वर को निर्माता माना जाए तो इसका अर्थ उसने जगत व मनुष्य को एक पूर्वकल्पित भाव के अनुरूप बनाया है जो सार्त्र के 'अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है' इस मत के विरोध को प्रदर्शित करता है। मानवीय स्वतंत्रता के कारण ही सार्त्र मानव अस्तित्व के हर आयाम व पक्ष को इसी प्राथमिक चेतना के अनुरूप व्याख्या करते हैं और इसी कारण वह ईश्वर की आवश्यकता ही महसूस नहीं करते। इसी आधार पर वह कहते हैं ''मनुष्य सिवाय इसके कि जो कुछ वह स्वयं को बनाता है से अन्य कुछ नहीं है''[13]।

सार्त्र ने अपनी सत्तामीमांसा द्वारा सत्ता के विभिन्न स्वरूपों के रूप में चेतना के विविध लक्षणों तथा उसके महत्व पर प्रकाश डाला है। चेतना के आधार पर वर्णित उनकी चेतना सत् की व्याख्या मानव को उत्कृष्ट रूप में वर्णित करती है वहीं अचेतन जगत की विषय के रूप में महत्व को भी दर्शाती है। किन्तु एक तथ्य यह भी सामने आता है कि ईश्वर के न होने पर स्वतंत्रता की चेतना मानव को कभी कभी निरंकुशता की ओर भी ले जाती है। चेतना का महत्व इसी बात से दर्शित होता है कि चेतना के बिना वस्तु जगत का अस्तित्व तो हो सकता है किन्तु उसका प्रकाशन सम्भव नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Being and Nothingness P.- 620*
2. *Being and Nothingness Class lecture notes pro. Spade fall 1995. P-74*
3. *श्रीवास्तव जे0एस0/पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां पृ0– 466।*
4. *लाल बी0के0/समकालीन पाश्चात्य दर्शन पृ0–547।*
5. *श्रीवास्तव जे0एस0/पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां पृ0– 466।*
6. *Being and Nothingness P.- 80*
7. *Gour Ved Prakash/Indian thought Exsistentialisn P-31*
8. *श्रीवास्तव जे0एस0/पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां पृ0–467।*
9. *लाल बी0के0/समकालीन पाश्चात्य दर्शन पृ0–554।*
10. *Being and Nothingness P.- 255*
11. *लाल बी0के0/समकालीन पाश्चात्य दर्शन पृ0–548।*
12. *Being and Nothingness P.- 302*
13. *सार्त्र, अस्तित्ववाद एवं मानववाद पृ0–28।*